हिमानी-३

जलता अन्धेरा

—शामा सेठी

रुकते कदमों की आहटें/कराह उठीं।
दिन ढले —इक याद का आँचल थाम
आँख का पानी/चुपके से गिरा !!!
बुझते सायों के पीछ —
रुह भटकती रहा।
दिन ढले,—
तुलसो के चौरे पर/गोरे हाथों/दोप जला
...... और कहीं से दूर आती
हवा में, बोल काँपे :—
"मैं तो दोप नहीं,/उसके तले का अन्धेरा हूँ,
फिर भी/मैं क्यों जला-जलता ही रहा।"

अनुक्रम

	जलता अन्धेरा	—	शामा सेठी	
१.	घुटन (कहानी)	...	डॉ॰ निर्मल चोपड़ा	२३
२.	गजल	—	डॉ॰ अग्निशेखर	२८
३.	विडम्बना (कविता)	...	वीरेन्द्र डेम्बी	२९
४.	खामोशी (कहानी)	...	दुर्गा बखशी	३०
५.	प्रत्यभिज्ञा शास्त्र (लेख)	...	पूर्णानन्द सरस्वती	३३
६.	अन्धकार को पीकर (कविता)	...	मजहर अहमद खान	३५
७.	तर्कहीन स्थिति (कविता)	...	राजेन्द्र किचलू	३६
८.	अनंग अस्तित्व (कविता)	...	बबली धर	३७
९.	गुप्त रहस्य (कविता)	...	बबली धर	३८
१०.	मर्यादा (कहानी)	...	बदरून्निसा	४०
११.	नवनीत (दो)	...	बदरुन्निसा	४५

घुटन

डॉ० निर्मल चोपड़ा

ओह कितनी घुटन है यहाँ। उठकर कमरे की खिड़कियाँ खोलती हूँ लेकिन यह घुटन फिर कम नहीं होती। कम होगी भी कैसे? मेरे भीतर का अन्धेरा कभी छंटता ही नहीं अपितु परत-दर-परत जमता ही जा रहा है और मुझे अपने से बहुत बहुत दूर लिए जा रहा है घर में माँ, पिताजी और छोटे बहन - भाई के रहते हुए भी ऐसा लगता है जैसे मैं एक सराय में ठहरी हूँ जहाँ मेरा अपना कोई नहीं, सब बेगाने और पराए हैं और इन सबके बीच मैं अकेली हूँ, बिलकुल अकेली, अपने से जूझती हुई।

कितनी बदल गई हूँ मैं। बात-बात पर चिढ़ना मेरी आदत-सी बन गई है। बबलू की उछलकूद मुझे अच्छी नहीं लगती। उसे डाँटती हूँ तो वह सहमा-सा मेरी ओर देखता है। मिनी कोई भी बात करना है तो उसे झिड़क देती हूँ। वह अपनी भोली आँखों से मेरी तरफ देखते हुए शायद यही सोचती है कि क्या हो गया है दीदी को। माँ की बातों से मुझे मसालों और सरसों के तेल की बू आने लगी है और पापा —उनके विचारों से तो मैं कभी सहमत न हुई। यह करो, वह मत करो। सादगी से जीवन बिताओ, ईमानदारी से काम करो। हुँह, भाड़ में गई ऐसी ईमानदारी। उनकी इसी ईमानदारी ने आज उन्हें खाट पर लिटा कर दमे का मरीज बना दिया है और मुझे संघर्ष के रास्ते पर ला खड़ा कर दिया है। चाचा जो भी पापा के ही भाई हैं किस ठाठ से रहते हैं। आलीशान बंगला, कार और अच्छा खाना पीना। चाचा ने एक छोटे से ओहदे पर भी कितनी तरक्की की लेकिन पापा एक अच्छे ओहदे पर रहकर भी कुछ कर न सके। चाचा की दोनों लड़कियाँ, वन्दना और शुची, को तो देखो, किस शान से निकलती हैं घर से। दोनों मुझसे बड़ी हैं लेकिन अच्छे कपड़ों और मुँह पर चढ़ी

मेकअप की परत के कारण मुझसे कई साल छोटी लगती है। और मैं —अपने चेहरे पर पड़ी झुर्रियों को गिन सकती हूँ और इस चौबीस साल की उम्र में भी इकतीस-बत्तीस साल की औरत लगने लगी हूँ। कल जब चाचा ने बताया कि वह बन्दना और शुची की शादी करने जा रहे हैं तो कैसा हो गया था पापा का मुँह। कैसे करगे वह मेरी शादी, क्या है उनके पास? कितना गुस्सा आता है मुझे पापा पर। अरे ऐसी ही ईमानदारी से जीना था तो क्यों की शादी। शादी भी की तो क्यों किया मुझे पैदा जब तुम मुझे कोई सुख न दे सकते थे। इस घुटन के अतिरिक्त तुमने मुझे दिया ही क्या है। और माँ—अबला कहीं की। क्यों दिया उसने पापा का साथ, क्यों नहीं उन्हें राह बदलने का सुझाव दिया, क्यों टूटती रही सारी उम्र।

कप-प्लेट की छन् की आवाज से मेरी बिचार-श्रृंखला टूट जाती है। माँ सामने चाय लिए खड़ी है। मैं चुपचाप माँ के हाथ से चाय का कप ले लेती हूँ और धीरे-धीरे सिप करती हूँ। चाय का स्वाद कड़वा-सा लग रहा है लेकिन फिर भी पीती हूँ, इस जीवन की तरह जो बहुत ही विषम है लेकिन फिर भी जीती हूँ।

"बेटी आज सब्जी क्या पकाएँ।" माँ मेरे पास बैठते हुए बड़े प्यार से मुझसे पूछती है। "हूँऊ क्या कहा", मैं दूर तक फैली अपनी सोचों से वापस लौट आती हूँ। माँ अपना प्रश्न फिर दोहराती है। माँ की ओर गुस्से से देखती हुए मैं झल्लाकर कहती हूँ, "रोज तो यहाँ पुलाव और पकवान पकते नहीं हैं। जो भी घर में पड़ा है, बना लो, मुझसे क्यों पूछती।" माँ मेरा यह कड़ुआ उत्तर सुनकर टूटे कदमों को घसीटती हुई चुपचाप रसोईघर की तरफ बढ़ती है। माँ को इस प्रकार जाते हुए देखकर कोई चीज आरी की तरह मुझे भीतर तक चीरती है और मैं सोचती हूँ—आखिर माँ का भी क्या दोष। उसने भी क्या कभी सुख देखा? कभी अच्छा खाया, न पहना। जीवन भर पापा के अधीन रही और अब हम बच्चों की बातें सुननी पड़ती हैं और वह घुट के रह जाती है। माँ की घुटन का मुझे अहसास होता है और मैं रसोईघर की तरफ जाती हूँ— माँ का हाथ बंटाने। स्टोव पर

दाल चढ़ी हुई है और सामने बैठी माँ की आँखें शून्य में कुछ देख रही हैं। मेरे कदमों की आहट सुनकर माँ की आँखें मेरी तरफ मुड़ती हैं जैसे बहुत कुछ कह रही हों। अन्दर से पापा के खाँसने की आवाज आती है। माँ मेरी तरफ देखती है, जब मुझे अपनी जगह से हिलता नहीं पाती तो खुद ही उठकर चली जाती है—पापा को संभालने।

खाना बन चुका है। माँ परोस रही है। बबलू माँ को दस बातें सुनाकर ही दाल-चावल खाने पर राजी हुआ है। मिनी ने भी आधे चावल छोड़ दिए हैं। मैं खाना निगल रही हूँ। आखिर इस मशीन को चलाने के लिए कुछ तो चाहिए ही। खाने से निवृत्त होकर सबका बिस्तर ठीक करती हूँ। यही तो जीवन रह गया है। सुबह उठना, दिन में घुटना और रात को सोना। और कोई चेंज नहीं, कोई नयापन नहीं। सब आगे निकल रहे हैं और मैं वर्षों से एक ही जगह पर खड़ी हूँ, अकेली, उदास-सी।

मैं देख रही हूँ बबलू और मिनी गहरी नींद में सो रहे हैं। पापा बेचैनी से करवटें बदल रहे हैं और माँ भी सोई नहीं, एकटक छत की ओर देखे जा रही है। "क्या बात है माँ, नींद नहीं आ रही क्या।" मैं नम्रता से पूछती हूँ। "दाँत में आज फिर दर्द हो रहा है, इसलिए नींद नहीं आ रही।"

"कितनी बार तुमसे कहा है इसे निकलवा लो लेकिन जैसे तुम सुनती ही नहीं।"

"बहुत अनजान बनती हो निशा। अरे भई पैसे हो तो निकलवाऊँगा। तुम्हारे पापा ने जबसे खाट पकड़ ली, तबसे जैसे दुर्भाग्य साथ छोड़ता ही नहीं। देखो ना एम० ए० करके भी तुम्हें कहीं नौकरी नहीं मिलती घर में चार पैसे ही आ जाते।" माँ की आवाज भर्रा आई है।

पैसे—कहीं माँ का संकेत उन रुपयों की तरफ तो नहीं जो चाचा ने कल जाते समय मुझे दिए थे। कहीं माँ उन्हें मुझसे छीनकर अपने दाँत का इलाज तो नहीं करवाना चाहती? मैं मन-ही-मन पर्स में पड़े उन पचास रुपयों को कसकर पकड़ लेती हूँ कि यदि ढीली पड़ गई तो माँ छीन लेगी दाँत के इलाज के लिए, बबलू छीनेगा फटे जूतों

की जगह नए जूते खरीदने के लिए, मिनी छीनेगी नया बस्ता लाने के लिए या पापा छीनेंगे अपनी दवाई के लिए। लेकिन मैं उन्हें क्यों दूं? मुझे इन रुपयों से वह सूट खरीदना है जो 'ब्लू फाक्स' के शो रूम में टगा हुआ है। जिसे पहनकर मैं शुची से भी सुन्दर लगूंगी और वन्दना से भी अच्छी। रात भर वही सूट पहनकर सपनों में मैं घूमती रही, अक्षर के साथ। अक्षर—जो मेरे पड़ोस में रहता हुआ भी मुझसे कितना दूर है। उसकी एक झलक पाने को मैं तरसती रहती हूँ।

आज मेरा 'मूड' कुछ ठीक है। नाश्ता करके मैंने अपने फीके पड़े पीले सूट को प्रेस किया और तैयार हुई रेज़ीडेनसी-रोड जाने के लिए। आज मुझे सूट खरीदना है ब्लू—फाक्स से। शो केस में सूट बहुत प्यारा लग रहा है और पर्स से पचास का नोट बाहर आने को मचल रहा है। लेकिन यह क्या? प्राइस स्लिप पर तो एक सौ पचास लिखा है। कल शायद मैंने एक्साइटमेंट और जल्दी में पचास पढ़ लिया था। मेरा सिर घूमने लगता है और उल्टी-सी आ रही है। मुझे यह सूट अक्षर की तरह अपने से दूर, बहुत दूर जाता हुआ दिखाई दे रहा है। भारी कदमों से मैं पटरी से नीचे उतरने लगती हूँ कि पैर मुड जाता है और चप्पल टूट जाता है। बडी मुश्किल से पाँव को घसीटती हुई थोड़ी दूर बैठे मोची के पास पहुंचती हूँ लेकिन मोची चप्पल गाँठने से इन्कार कर रहा है, "बहन जी इसमे पहले से ही इतने कोल ठोके जा चुके हैं कि अब कोई गुंजाइश हो नहीं।" लेकिन मेरे बहुत कहने से मोची मान गया है और चप्पल ठीक कर रहा है। कहीं मुझे इस हालत में कोई देख तो नहीं रहा? आसपास देखती हुई मेरी आँखें अचानक एक जाने-पहचाने चेहरे पर आकर रुक आती हैं। हाँ, यह अक्षर ही तो है जो अपने दोस्तों के साथ सॉफ्टी को दुकान पर सॉफ्टी खा रहा है। अरे यह क्या? उसकी नजर मुझपर पड़ी। वह मुझे देखकर अपने दोस्तों से कुछ कह रहा है और वे सब भी यहीं की ओर देख रहे हैं और जोर-जोर से हँस रहे हैं। वे हँसते ही जा रहे हैं, शायद मुझपर, मेरी स्थिति पर। नहीं अक्षर नहीं, ऐसे मत हँसो, मत उड़ाओ मेरी बेबसी का मजाक इस तरह। मैं पागल हो जाऊँगी, मर जाऊँगी।

"बहन जी चप्पल तयार है।" मैं चप्पल पहनती हूँ और मोची को पचास पैसे पकड़ाते हुए मैं चल पड़ती हूँ लेकिन कहाँ ? कहां जाना है मुझे ? कहाँ जाऊँ मैं ? दूर तक अक्षर के ठहाके मेरा पीछा करते हैं और चप्पल की यह नयी कील मेरे पांव के अन्दर तक चुभती ही चली जा रही है और घाव बना रही है। फिर भी मैं चलती जाती हूँ—दिशाहीन-सी। अचानक एक चप्पलों की दुकान के पास पहुँचकर मेरे पाँव रुक जाते हैं। क्यों न इन पचास रुपयों से एक नई चप्पल खरीदी जाए ताकि इस दर्द से मुक्ति मिले। दुकान के ऊपर चढ़ती हूँ। सेल्जमैन तरह-तरह की प्यारी-प्यारी चप्पलें दिखा रहा है। कीमत—पचासी, बहत्तर, साठ, पचपन, बावन। पचास तक या पचास से कम कोई नहीं। दो रुपए और होते तो यह बावन वाली चप्पल लेती। कितनी विवश हूँ मैं, मन मसोसकर रह जाती हूँ। पास बैठी महिला अब तक चार जोड़े पैक करा चुकी हैं। उसके पैरों की तरफ दृष्टि जाती है। कितनी प्यारी नेल पालिश लगा रखी है। काश मैं भी लगा पाती। अपने पैरों को पुरानी चप्पलों में वापस डाल रही हूँ।—"कौनसी पैक कर दूं मैडम।"—मुझे कोई पसन्द नहीं।" सेल्जमैन की व्यंग्य भरी मुस्कान का समाना न करते हुए मैं धीरे से कहती हुई दुकान की सीढ़ियाँ उतरती हूँ।

अब मुझे कहां जाना है ? मन में एक बार फिर यही प्रश्न उठता है और पैर बारबर पटरी पर चल रहे हैं। घर—नहीं, अभी नहीं जाऊँगी वहाँ। कुछ देर दूर रहना चहती हूँ उस दमघोंटू वातावरण से। पैर चलते-चलते अचानक दीपा के घर के पास आकर रुकते हैं। द्वार खटखटाती हूँ। द्वार दीपा ही खोलती है। "हाय निशू कैसी है। बहुत दिनों बाद नजर आई।" अपनी आदत के अनुसार वह मेरी पीठ पर हाथ मारते हुए पूछती है। 'बस ऐसे ही', मैं अन्दर जाते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर देती हूँ। ड्राइंग रूम में बैठते हुए यही सोचती हूँ—यह दीपा भी तो मुझ जैसी ही थी। यह इतना आगे कैसे बढ़ गई और जहाँ की तहाँ क्यों खड़ी हूँ ? यह ड्राईंग रूम — अभी एक साल पहले तो यहाँ दो खाटें और दो टूटी-फूटी कुर्सियां हुआ करती थीं। लेकिन आज यह सोफा, ये फ्रिज, ये सब ऐश्वर्य के साधन। "यूं आँखें फाड़-फाड़कर क्या देख रही निशा।" कोल्ड ड्रिंक पकड़ाते हुए

दीपा पूछती है, "यही ना कि यह सब कहाँ से आया। अरे यार पहले ता मुझे बधाई दे मेरी सगाई की। अब तू यह पूछेगी कि किस से हुई तो यह देख इनसे हुई है और यह सब काया-पलट इन्हीं द्वारा हुआ है।" फ्रिज पर से फोटो उतारकर मुझे दिखाती है—एक बदसूरत से अधेड़ व्यक्ति की। मैं हैरान होकर दीपा से पूछती हूँ, "प्रफुल्ल का क्या हुआ दीपा, जिसके बिना तुम अपने जीवन की कल्पना भी न कर सकती थी।" "अरे छोड़ यार, किस कंगले की बात कर रही है, दीपा बड़ी लापरवाही से बोलती है "आजकल एक स्कूल में मास्टर है वह। तू ही बता क्या दे पाता वह मुझे।" फोटो की तरफ इशारा करते हुए दीपा आगे बोलती है, "यह जनाब तो इनडस्ट्रीयलिस्ट हैं इनडस्ट्रीयलिस्ट। लाखों मे खेलते हैं।" तो दीपा बिक गई है, इस बदसूरत अधेड़ व्यक्ति के हाथों। जीवन से ऐसा समझौता मैं नहीं कर सकती। कभी नहीं। दीपा से जैसे घृणा-सी होने लगी है और अब यहाँ बैठने का मन नहीं कर रहा है। दीपा खाना खाकर जाने के लिए बहुत आग्रह कर रही है लेकिन मैं दुबारा आने का वादा देकर घर की ओर चल पड़ती हूँ। रास्ते भर में दीपा के विषय में ही सोचती हूँ। यदि प्रफुल्ल अक्षर जैसा अमीर होता तो क्या दीपा उसे यँ छोड़ देती। फिर प्रफुल्ल ही उसकी ओर क्यों देखता। अक्षर का ध्यान आते ही घर और उससे जुड़ी समस्याएँ आंखों के आगे घूम जाती हैं और पैर तेजी से आगे बढ़ने लगते हैं, अखबार वाले भइया की ओर। "एक 'एम्पलॉय-मेंट-न्यूज़' देना तो गोपाल भइया।" पेपर के लिए हाथ आगे बढ़ाती हूँ। "दीदी आप पहले पिछला हिसाब चुकता कीजिए, आज मालिक को हिसाब देना है।" गोपाल हिचकिचाकर बोलता है। मैं अपना बढ़ा हुआ हाथ पीछे खींचते हुए मरियल स्वर में धीरे-से पूछती हूँ—"कितना है।" गोपाल एक पुराने अखबार पर कुछ हिसाब लगाकर कहता है, "दो महीने के बयालीस रुपए पचहत्तर पैसे बनते हैं।" मैं मरे हुए हाथों से पर्स में से पचास का नोट निकालती हूँ और गोपाल को पकड़ाते हुए ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि एक बहुत बड़ा सहारा मुझसे छिन रहा है। गोपाल से बाकी के पैसे और एक एम्पलॉय मेंट न्यूज़ लेकर पर्स में डालती हूँ और आँखों में ढेर सारे आँसू छुपाए घर की तरफ बढ़ती हूँ।

गज़ल

—डॉ० अग्निशेखर

टूट रही खामोशी का यह शोर शहर
उभर रहा घर-आँगन में कोई और शहर

है गायब जो देहात से आई दुल्हन थी
डांट रहा जिस तिस को उल्टा चोर शहर

चेहरों से छिन जाती रही मुस्कान यहाँ
है झांक रहा न नज़रों में आदमखोर शहर

अबर में बादल बाँट रहा मृत्यु की भाषा
स्वागत में सुन्दर नाच रहा यह मोर शहर
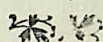
विडम्बना

वीरेन्द्र डेम्बी

आशाओं के आयाम आँसुओं में सिमट गए
दिशाएँ आस्था का विश्वासघात कर गईं,
मंज़िलें खोने लगीं राहों की तलाश में
सीमाओं में उलझ गई दर्द की चीत्कारें
फिर
क्षण का बोध करने के लिए
सारा संसार कल्पना हो गया,
इच्छाएें फिर साकार हो उठीं,
कर्म का चक्र फिर चलने लगा,
लेकिन कैसी विडम्बना,
ज्ञान का सागर वाष्प हो गया
इसीलिए, पीठ दिए हुए
आँखें मूदँ कर
संसार को जीने का एकमात्र सहारा रह गया।

खामोशी

दुर्गा बख्शी

प्यारा-प्यारा मौसम था। सर्दी काफी थी। बर्फ पड़ रही थी। चारों ओर का समा सुहावना तथा मनोरंजक प्रतीत होता था। हर सड़क, मकानों के छत तथा आँगन बर्फ से ढके हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि सारा श्रीनगर सफेद चादर से ढक दिया गया हो। पेड पौधे, कांटेदार झाड़ियाँ, सभी कुछ बर्फ से ऐसे ढके हुए थे, जैसे कि बर्फ की ही छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बनी हुई थीं। खिले फूलों के स्थान पर बिधाता ने पेड़ों की टहनियों पर बर्फ के फूल सजा कर रख दिए थे, जिन के बोझ से टहनियाँ नीचे को ओर झुकी हुई थीं।

बिटा यह दृश्य देखने में काफी मग्न थी। इस दृश्य को देखते देखते बिटा को उस दिन की याद आई जिस दिन ऐसी ही बर्फ पड़ रही थी। मौसम ऐसा ही थी जब उस की सहेली पिंकी उछलती-कूदती बिटा से मिलने आई थी। बिटा ने उस ऐसी बर्फ में आने का कारण पूछा था और पिंकी कह उठी थी- "बिटा, आज मेरी और रुपेश की सगाई होने वाली है। मैं अब उससे अलग नहीं हो जाऊंगी। और तुम्हें भी मेरे घर आज आना होगा।"·········

और बिटा ने आँसुओं को छिपाते हुये पिंकी को गले लगाया था और मुस्कुराती हुई उसे दुआएँ देने लगी थी। बिटा के दिल पर क्या गुजरी थी, पिंकी को नहीं मालूम था। अब तो पिंकी एव रुपेश की शादी भी हुई और वे दोनों अपने ग्रहस्थ-जीवन की गाड़ी चलाने में अत्यन्त प्रसन्न हैं।

यही सोचते-सोचते बिटा उन पुरानी यादों में खो गई। जिस प्रकार बर्फ ,जम जाने पर "तुलकतुर' बन जाता है उसी प्रकार इन यादों ने बिटा के दिल को ठण्डा बना दिया। यद्यपि बिटा ने अपने दिल को पत्थर का बना लिया था पर फिर भी दिल तो दिल ही है आखिर·········। बिटा को आँखों के सामने पिंकी और रूपेश दोनों घूमने लगे।···········उस इसी बर्फ में पिंकी आँगन का द्वार पार

करती हुई नजर आने लगी। जिस के हाथ में छाता तो था, पर उसकी फिरन बर्फ से ढकी हुई थी। पिंकी छाते और फिरन से बर्फ हटाने लगी और थोड़ी देर में अन्दर कमरे में चली आई। बिटा ने काँगडी उसे थमा दी। पिंकी काँगडी सेंकने लगी और दोनों सेहेलियाँ खिड़की पर आ बैठी।

दोनों इधर-उधर की गपे हाँकने लगीं। कभी-कभी दोनों अपने विचार एक होकर प्रकट करतीं कि क्या होता यदि ऐसी वर्फ में उन्हें घरवाले, 'गुलमर्ग ले जाते और दोनों स्केटिंग Skating का मजा लूटते। वहाँ पर तो यात्री दूर-दूर से इन सुहावने दृश्यों को देखने के लिए आते हैं। पर कश्मीर के लोग यहाँ रह कर भी इन दृश्यों से वंचित रह जाते हैं।.........

इन यात्रियों की बात करते-करते बिटा को फिर से वह पुरानी याद कुरेदने लगी.........जब कालेज जाते-जाते बिटा और पिंकी की मुलाकात एक अजनबी से हुई थी। दोनों सहेलियों की उस अजनबी से बातचीत हुई थी, तीनों की आपस में मित्रता हुई थी। तीनों मिलते रहते तथा गप्पे करते। बिटा एव पिंकी दोनों की समझ में नहीं आता था कि वे उस अजनबी से क्यों मिलती थीं। शायद दोनों सहेलियों के हृदय में उस अजनबी के प्रति आकर्षण था लेकिन किसी ने स्वय को उस पर प्रकट नहीं किया। कभी-कभी बिटा को लगता था कि रुपेश तथा पिंकी दोनों आपस में प्रेम करते हैं और कभी सोचती नहीं, वह तो केवल उसका है—उसका अपना। फिर न जाने क्यों पिंकी को देखकर वह इस विचार से दूर भागना चाहती थी। पर यह विचार छोड दे, तभी ना।

बिटा उस दिन की याद में पूरी तरह से डूब गई। बिटा को याद आया, जब एक दिन खिडकी पर दोनों सहेलियाँ बातें करते-करते अचानक चुप हो गई थीं। बर्फ के मौसम की खामोशी के समान उस समय इन दोनों सहेलियों पर भी खामोशी सवार थी। इस खामोशी को तोड़ने में दोनों असमर्थ थीं। इस खामोशी को तोड़ने का प्रयत्न पिंकी ने ही किया था जब उसने बिटा से पूछ लिया था—"तुमने अपने Future के बारे में क्या सोच लिया है?"

बिटा यह सुनकर चौंक पड़ी थी। मन-ही-मन सोचने लगी थी.........
"आखिर मैंने अपने Future के बारे में सोचा ही क्या है। हम दोनों सहेलियाँ तो उस अजनबी रुपेश को चाहती हैं। आखिर होगा क्या... ....दोनो सहेलियों में से एक को वापस मुड़ना होगा। मैं ही वापस मुड़ जाऊँगी। मुझ में सहन-शक्ति काफी है। मैंने तो जीवन में सीखा है कि लोगों में अपनी खुशियाँ बाँटते रहो, किसी से कुछ छीनो मत, सिर्फ देते रहो। तो फिर मुझे वापस मुड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। उस अजनबी को चाहने वाली गैर तो कोई नहीं, मेरी अपनी सहेली तो है। यदि मेरी प्रिय सहेली इसी में प्रसन्न रहेगी, तो मुझे अपनी प्रिय सहेली पिंकी के लिए यह खुशी भी त्यागनी होगी। पिंकी कैसे उसे पा सकेगी, इस मामले में मैं उसकी पूरी सहायता करूँगी। यह मेरी हार नहीं जीत होगी। लोग कहते हैं कि मैं खामोश क्यों रहती हूँ। पर उन्हें नहीं मालूम कि मैं इस खामोशी में कितनी प्रसन्न हूँ। पर अपनी भावनाओं पर काबू रखना है मुझे और मेरी भलाई भी मेरी खामोशी में ही है।............."

"अरे तुम बोलती क्यों नहीं। लगता है कि किसी की याद.........।" पिंकी फिर से बिटा से बोली थी।

"नहीं तो"—बिटा बोली थी।

बिटा फिर से सोच में डूब गई थी और मन-ही-मन कहने लगी थी "मेरा दिल रखने के लिए पिंकी ऐसा बोलती है क्योंकि जानती है कि मैं रूपेश को चाहती हूँ, दिखावे के लिए मुझ से इस तरह बोलती है ....पर मुझे तो खामोश रहना है —...हर बात खामोशी में टाल देनी है। जैसे मैं कुछ भी समझने में असमर्थ हूँ। मैं तो स्वयं से वादा कर चुकी हूँ कि स्वंय को इन पर प्रकट न होने दूंगी, फिर यह सब क्यों मैं सोचती हूं ....। 'आखिर परिणाम क्या होगा इस चुप्पी का'। पर इस परिणाम से मैं थोड़े ही अनभिज्ञ हूँ। लेकिन...... लेकिन मुझ में सहनशक्ति बहुत है। में गमों से दूर नहीं भागती। हाँ, इस बात का डर है कि यदि यह सब पिंकी को सहना पड़े तो फिर.......—। नहीं-नहीं। यह सब मुझे ही सहना है और यह सब खुशी से कर लूंगी।"

बिटा ने यह सब प्रसन्नता से कर दिखाया। उस ने अपने खामोश होंठों को सी लिया था। वह खामोश रही थी। यह खामोशी भी इसी बर्फ के मौसम के समान ही थी। बर्फ की ठंड ने उसके होंठों को भी जमने के लिये विवश किया था। यही सोचते-सोचते अचानक बिटा की माँ ने इसे नीचे आने के लिए बुलाया। इसकी विचार-धारा टूट गई। उसने इधर-उधर देखा। कहीं कोई न है। सिर्फ खामोशी थी जो हर वर्ष इस मौसम में हुआ करती थी और आज भी थी। इसके हृदय में भी यही खामोशी थी, जिसे कई वर्षों से वह सहन करती आई थी। वह खिड़की से उठकर अन्दर गई पर उसका दिल इसी खामोशी में डूबा था।

—:०:—

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र

--पूर्णानन्द सरस्वती

यस्मिन् सर्वं, यतः सर्वं, यः सर्वः सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः॥

(जिस में यह सब विश्व स्थित है, जिससे यह सब प्रादुर्भूत है, अतः जो यह सर्वरूप है, जो सब तरफ से दीख रहा है, ऐसा जो सर्वमय देव है, उस सर्वात्मा भगवान् शिव को मेरा नमस्कार है।)'

प्रत्यभिज्ञा कश्मीर शिवाद्वय दर्शन का शास्त्र है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ने ही कश्मीर के अद्वैत दर्शन का दार्शनिक रूप विचार प्रस्तुत किया है। इस शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य सोमान-न्दनाथ है। आचार्य सोमानन्द नाथ कृत "शिव दृष्टिः" प्रत्यभिज्ञा शास्त्र का मूल ग्रन्थ है। उदयाकर सून उत्पल देव का "प्रत्यभिज्ञा" कारिका तो इसके नाम करण का एकमात्र आधार है। आचार्य उत्पलदेव का प्रशिष्य आचार्य अभिनवगुप्त ने "प्रत्यभिज्ञाकारिका" पर "ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविवृन्तिविमर्शिनी" नामक व्याख्या तथा "तन्त्रालोक"

"तन्त्रसार" "परमार्थसार" आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखकर प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। भारतीय साहित्य और दर्शन में अभिनव-गुप्त पाद का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन भगवान शिव के साथ प्रमाता (जीवात्मा) की एकता अभीष्ट है। सृष्टि भी भगवान् शिव की इच्छा से होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार मोक्षावस्था में भगवान् शिव का 'प्रत्यभिज्ञान' होता है। जिस प्रकार लौकिक प्रयोग में यह "वही-देवदत्त" है ऐसे ज्ञान और व्यवहार को होने पर "मैं वही "शिव" हूँ ऐसा ज्ञान ही "ईश्वर प्रत्यभिज्ञान" है।

इस प्रकार भगवान् शिव ही सत्य है। प्रमाता (जीव) शिव स्वरूव ही है। जगत् भगवान् शिव से अभिन्न है। मलावरण (अज्ञान) के कारण प्रमाता का अपना स्वरूप अर्थात् शिवस्वरूप आवृत्त रहता है। गुरु के अनुग्रह द्वारा उस स्वरूप का साक्षात्कार होने पर प्रमाता को अपने शिव स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान होता है, इसलिए इस शास्त्र का नाम 'प्रत्यभिज्ञा शास्त्र" है।

इस दशन में अज्ञान भगवान् शिव की इच्छा शक्ति मात्र है। भगवान् शिव के गुणों का अभ्यास होने पर भी उनका परामर्श न होने के कारण तादात्म्य नहीं होता। जिस प्रकार एक कामिनी किसी नायक के गुणों से परिचित होने पर भी, अज्ञातरूप से नायक के समीप होने पर भी, 'प्रत्यभिज्ञान के बिना मदन विह्वल नहीं होती, परन्तु किसी दूती द्वारा इस प्रकार करने पर कि यह वही नायक है, नायक के पहिचान-ने पर प्रेमाकुल होकर आत्मसमपण कर देती है, उसी प्रकार स्वयं शिव होते हुए भी जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, परन्तु गुरु के द्वारा अपने स्वरूप का ज्ञान कराने पर वह आत्मानन्द के अनुभव में निमग्न हो जाता है। इस प्रकार अपने स्वरूप का पूण प्रत्यभिज्ञान होने पर अन्य कुछ भी अपेक्षित नहीं रहता।

"अहोऽहं नमो मह्यम्" इति शिवम्॥

अन्धकार को पीकर

—मज़हर अहमद खान

लोग यों तो—
परम्पराओं की मर्यादा
निभाने के उद्देश्य से
लाखों दीपक बालते हैं
जगमग-चकाचौंध
और स्वयं को
अंधकार के रेगिस्तान में
बराबर धकेलते हैं।
अंधेरे कमरे में
हीरे की कनी की भांति
ज्योतिपुँज है—
ईमानदारी।
जीने की भीतरी ईमानदारी
जिसे आज सब
अछूत समझते हैं—
पर वही
विश्व के समूचे
अंधकार से
आँख मिलाने की सामर्थ्य रखती है।
हमें बालना है
केवल एक दीपक
बस एक ही दीपक
जो अकम्प रहे—अन्धकार को पीकर।

तर्कहीन स्थिति

—राजेन्द्र किचलू

परवाने के दीपक पर/जलने का
भला/कोई महत्व रहा हैं अब ?
अब तो, लाखों/परवाने/सूर्य की
किरण लौ पर/झुलस कर रहते हैं।
दीपक की लौ पर/परवाना प्राणों की बलि चढ़ा,
अपने अस्तित्व को/मिटा ही डालता है।
पर, दीपक/सदा, परवाने को
प्यार में तड़पाने हेतु/अधजला ही छोड़ता है।
दीपक के दर्शन से/परवाना कुछ क्षण
अपने शरीर और आत्मा को/शांति प्रदान करता है,
पर, क्या/दीपक के दर्शन से
परवाने को/मिलता होगा विशेष रस ?
कह नहीं पाता हूँ ?/पर
अनुभव से कहता हूँ/मुझे
सूर्य के दर्शन से/पीक रूपी रस मिलता है।
दीपक के प्रेम पर/मुझे छल दीखता है
नहीं तो वह परवाने/को आँखों से ओझल न करता।
मुझे अपने प्रियतम पर गर्व है/क्योंकि
सदा आँखो के सामने मुझे/रखना चहता है वह।
कभी मैं अपने उस प्रियतम को/भला भूल सकता हूँ।
जिस प्रियतम ने मुझे/पीक और छेद रूपी
अमर निशानियाँ प्रेम की/प्रदान कीं।
मेरा प्रियतम बलवान है/नहीं तो अपनी निशानी को
सदा तरोताजा रखने हेतु/मरहमपट्टी करने वालों को
चारों चित लिटा देता है।
प्रियतम के मुझ पर/कितने ही ऐहसान हैं
क्योंकि/जहाँ दो बूंद पानी हेतु

लोगों को तरसाता है वहाँ पीक रूपी पानी में/सदा मुझ नहलाता है।
दीपक तो स्वार्थी है/जीवित रहता है,
परवाने का रस चूस कर/पर क्या कहूँ उसे प्रियतम का
जो मुझे मरने भी न देता/और अपनी प्यास बुझाता है।
मेरा ही खून चूस कर।

—:•:—

अनंग अस्तित्व

—बबली दर

अधेड़ निरंकुश/दुस्साहसी नव-युवक सा
स्वशक्ति में झूमता/बेचैनी का
अनन्त तूफान/मदिर गति से
परम्परागत/तोड़ता हुआ,
सीमाओ को,/अपनी
उन्मत्त जवानी पर/खिलखिलाता,
अग्रसर होता है/अनंग।
बेजबान किनारे/इस दण्ड को
अनस्तित्व में भी/साकार से
उपस्थित होकर/लहरों के तूफान में
एक हो कर/अनिर्दिष्ट की ओर
जाने लगते है/इन मे,
दिशा जानने की/इच्छा नहीं।
तीसरें पहर के/गहनतम-अन्धकार में,
घावों की कसक में
तपकर,/झुलस कर भी
टूटने की/असह्य, साधना को ही
स्वलक्ष्य-मानकर,/द्रुतगामी लाश से,
कभी नीचें,/कभी उपर,
जो बहते हैं/कौन ?
कौन कह सकता है/कि इनमें
बेबस अवसाद्र की/दाहक शीतलता है।

"गुप्त रहस्य"

—बबली धर

स्वभाव की विशिष्टता से
अपरिचित रह कर भी,
उल्टे पृष्ठों की
नित-नवीन आभा में/हम,
झूमते रहे।
सुलेख. रेखाओं को,
शान्ति का आधार
समझ लिया/जो
हथकड़ियों की कसक सा/चुभकर,
नस-नस के लहू को
जमाकर
बिना जख्म के,
दर्दनाक पीड़ा देता रहा/और
आँखें भी, असफलता के
अपमान में छटपटाने लगीं।
चुभन को चुंबन समझकर,
मुस्कान के
श्वेत आवरण में,/ढककर
वदेना की,
सहज कराहों को
कृत्रिम घोषित कर लिया।
लुभाने वाली,
रगीन तितलियों की
आभाओं को

अन्तरतम की आहें
पूजने लगीं।
किन्तु,
उनकी प्रतिभा की
बेदिली ने
हमें ही बेदिल समझा,
फिर भी हम,
अपने को
बुद्धिमान समझते रहे।
भीतर की घुटन,
सर्वोपेक्षित
बड़ी नालियों के जल में
महकती साबुन की
गंध देखकर,
सूंघती रही।
जबकि
पीने के उपक्रम में
सचेष्ट-चेष्टा
जाने क्यों
क्या समझकर
किस प्रेरणा की शक्ति से
हमें ही
सालती रही।
हतबुद्ध से,
जान न पाये,
जिन्दगी का
रवैया क्या है ?

—- :o :—

मर्यादा

—बदरुन्निसा

कौन कहता है कि देश आजाद हुआ है? अब हर-व्यक्ति को आजादी मिली है? मिली होगी! हमारे घरों में तो वही अँधेरा और घुटन का साम्राज्य है। चार साल हो गये ब्याहे। माता-पिता का घर तो छूट ही गया। अब वह घर न कहकर मायका कहलाता है। और यह घर ससुराल है। मेरा अपना कोई घर नहीं, मैं बे घर हूँ! मैं बेघर हूँ, !! मैं बेघर हूँ !!!

माँ तुमने मेरा घर क्यों छुड़वादिया? बचपन में तुम मुझे सुनहरे सपने दिखा-दिखा कर धोखा क्यों देती रहीं? तेरा पति तुझे बहुत प्यार करेगा। अच्छे-अच्छे कपड़े लाकर दिया करेगा। अच्छे-अच्छे गहने बनवा कर दिया करेगा। तू गुड़िया सी सजी-वनी पूरे घर की रौनक बनेगी। सास अपनी ममता तेरे ऊपर निछावर करेगी। बेचारी के कोई बेटी नहीं है। तुझे पाकर धन्य हो जाएगी। ससुर तो तेरे साक्षात् देवता का रूप हैं। जब तू उस घर में जायेगी तो ससुर गर्व से फूले न समायेंगे - हमारी प्यारी बिटिया अपनी ससुराल में-पैरों में महावर लगाये-पायजेब पहने, सेंदूर से माँग भरे घूंघट काढ़े घर के आँगन में चलेगी तो तेरे सास, ससुर को बरसों की साध पूरी हो जायगी। तुझे पता नहीं बेटी। बेटा जब पेदा होता है तभी से माता-पिता के हृदय में सुन्दर सी बहू लाने के अरमान कुलबुलाने लगते हैं और बरसों के बाद वह दिन आता है, जब बेटा अपनी जीवन संगिनी के रूप में एक लड़की को बहू बनाके लाता है।

"बेटा मैं तो जन्म की ही जखम जली निकली। भगवान ने बेटी तो दी लेकिन तेरे हाथ से राखी बँधवाने वाला पेदा न कर सकी। यह मेरे पूर्व जनम का पाप ही होगा। अब जल्दी से तेरे हाथ पीले कर दूं। भगवान करे तू अपने घर सुखी रहे। माता - पिता का आशीर्वाद

साथ रहेगा'' तभी मां तुम फूट-फूट कर रो दी थी। लेकिन 'माँ' तुम्हें क्या मालूम था कि तुम्हारा यह रोना कुछ समय का नहीं, तुम मरती-शय्या तक रोती रहोगी।

× × × ×

न जाने क्यों सुहागरात में भी मेरे पति ने मुझे प्यार नहीं किया। मेरी सहेलियों ने तो कहा था कि तेरे पति बड़े मान से तेरा घूँघट उठायेंगे। अपने दोनों हाथों से तेरा प्यारा मुखड़ा उठाकर तेरा माथा चूमेंगे, और फिर अपने हृदय से लगा लेंगे। दो दिलों की धड़कने मिलेंगी और तुम एकाकार हो जाओगे जनम जन्म के लिए।

मैं तो अपनी सखियों के बताए अनुसार अपने पति का इंतज़ार कर रही थी। उस समय मेरे पास कोई नहीं था। मैंने चुपके से एक बार फिर सिंगार कर लिया था। दर्पण में अपनी छवि देखकर खुद ही शर्मा गई थी। बहुत समय के बाद किवाड़ों में एक जोर का धक्का लगा और दूसरे पल मेरी कमर पर एक भरपूर लात पड़ी। मैं समझ ही नहीं पाई कि यह क्या हो गया और फिर रात भर मैं फूंस की गठरी की तरह कुचली गई गई।

"माँ तुमने कितने पहले से मेरी दसई के लिए कुम्हार से कोरे घड़े मंगवाये थे। उसपर पोले रंग का रोगन लगवाया था और फिर लाल हरे रंग की फूल पत्तियाँ बनवाई थीं। मेरी दसई के लिए मिठाइयाँ भरवा के मेरी ससुराल भेजा था, लेकिन माँ तुम उस समय देख पाती मेरे ससुर और पति ने वे मिठाइयों से भरे घड़े आंगन में जमीन से दे मारे थे। और मिठाई के टुकड़े मरे हुए परदे के परों जैसे आँगन में बिखरे पड़े थे। पिता जी ने बारी-बारी से ससुर और मेरे पति के पैरों पर अपनी टोपी रखदी थी; लेकिन पिता जी की मजबूरी पर तरस नहीं आया था। साफ कह दिया था कि शादी से पहले जितना रुपया ठहराया था वह पूरा करदो तो अपनी लडकी को विदा करा लेजाओ।

× × × ×

माँ तुम्हें याद है, जब तुम मुझे मार बैठती थीं तो दूसरे ही पल तुम्हारी आँखों में आँसू आ जाते थे, और तुम फौरन मुझे चुमकार के अपनी गोद में बिठा लेती थीं, और मेरी आँखों के मोटे-मोटे मोती चुम्बन करते पी लेती थीं। और तभी पिताजी मिठाई मेरे दोनों हाथों में थमा देते थे, और मैं सब कुछ भूल कर कभी पिता जी की गोद में और कभी माँ तुम्हारी गोद में और कभी अपने उस प्यारे आँगन में उछल कूद करके मिठाई खाती फिरती थी।

माँ तुम्हारी वह मार अब मेरे लिए मीठा सपना बन गई है। तुम्हें क्या मालूम अब तुम्हारी प्यारी बेटी को दिन रात जूतों और लातों से मारा जाता है। लेकिन बदले में कोई प्यार नहीं करता। तुम्हें क्या मालूम तुम्हारी बेटी जो कभी मिठाइयों को ठुकरा देती थी, आज रोटी के लिए तरसाई जाती है। मां अब तो पूरे घर के खाना खा लेने के बाद भी तुम्हारी बेटी गडुए में पानी लेकर बैठा रहती है कि सास उसकी थाली में बची हुई दो रोटो डाल दें। 'माँ तुमने अपने मन की आँखें से सब कुछ देख लिया होगा।

माँ तुम्हें मालूम है, मैंने अपने प्राणों का रस पिला पिला कर जिस बेटे को जन्म दिया था, वह अभी एक साल का भी नहीं हो पाया था। रोज को तरह वह मेरे सीने से लिपटा था मैं चक्की पीस रही थी मुझे आभास हुआ कि मेरा लाल एकाएक खामोश क्यों हो गया और मैं रोने लगी थी। तभी मेरी सास आई एक धक्का देकर मुझे पीढ़े से गिरा दिया और मेरे लाल को मेरी गोद से छीन लिय। माँ फिर मुझे अपना बेटा नहीं मिला-कभी नहीं। हाँ पड़ोस की कुछ स्त्रियां कह रही थी कि स्वर्ग में अपसराओं की गोद में किलकारियां मार रहा होगा। माँ उसका बस इतना ही कसूर था कि उसने मेरी कोख से जन्म लिया इसीलिए पिता उसे प्यार नहीं करते थे।

माँ तुम्हें मालूम है, सवेरे तीन बजे से मुझे चक्की का आटा पीसना पड़ता है। आज के वैज्ञानिक युग में, जहां आदमी चाँद पर भी हो आया है, माँ मेरे ससुर को मशीन के पिसे आटे की रोटी हजम नहीं होती।

माँ तुम्हारी बेटी की साड़ी तार-तार हो गई है। उसके पास कोई नई साड़ी नहीं है, माँ तुम मुझे कितनी प्यारी-प्यारी-फिराकें पहनाती थीं। मैं साड़ी पहनने की कितनी जिद करती थी, तो तुम मुझे चूम के कहती थीं जब तू ससुराल जायेगी तब साड़ियाँ ही पहना करेगी अभी और फिराकें पहन ले।

माँ तुम्हें नहीं मालूम जब तुम मंदिर चली जाती थी, तो मैं तुम्हारे संदूक में से चुपके से एक सुन्दर सी साड़ी निकाल लेती थी और कुछ शृंगार का सामान कंघा, शीशा लेकर स्नान घर में बद हो जाती थी, बाल्टी में नल खुला छोड़ देती थी ताकि स्नान घर बन्द और नल चलने की आवाज़ सुनकर जो भी घर में हो या वह यही समझे कि मैं नहा रही हूँ, और स्नान घर में साड़ी पहनती,/शृंगार करती, बाल संवारती और दर्पण में अपनी छवि देख-देख कर अपने ऊपर ही मुग्ध होती और लजाती। यह क्रम कुछ देर चलता और सब सामान जहाँ का तहाँ पहुंच जाता।

माँ तुम्हें याद है तुम्हें एक बार टायफाइड हो गया था। तुम बहुत तेज बुखार में थीं। मैंने देखा कि माँ तेज़ बुखार में हैं। उठ नहीं सकती, तो उस रोज़ मैंने क्या किया। तुम्हारे कमरे में उस लम्बे शीशे के सामने जो तुम्हारी चारपाई के पास दीवार से चिपका खड़ा है, उसके सामने खड़े होकर मैंने तुम्हारी बनारसी साडी पहनी। खूब शृंगार किया, हाथों में तुम्हारे कंगन पहने, गले में तुम्हारे कई हार पहन लिए, कानों में झुमके और माथे पै टीका सजाया और माँ, सुहाग की नथ पहनी। "माँ मैं अपनी छवि दर्पण में देखकर फूली नहीं समा रही थी। इधर माँ तुम बहुत तेज़ बुखार में थी और अपनी बेटी को आवाजें दे रही थी। मेरे कानों में तुम्हारी आवाज गई तो मैं बेखयाली में वैसे ही सारे ताम झाम के साथ तुम्हारे समाने खड़ी हो गई। तुमने मुझे पहचाना नहीं और मुझसे ही कहा हमारी बेटी को बुला दो कहाँ हैं? और तब मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ और मैं तुम्हारे सामने से भागकर कमरे में गई। अपने वही पहले वाले कपड़े पहनकर आई तो झट तुमने मुझे पहचान लिया था।

लेकिन माँ तुम अब मुझे नहीं पहचान पाओगी। आज तुम्हारी बेटी का वही नाजुक जिस्म और भोला चेहरा अधजला हो गया है।

× × × ×

तीन दिन पहले सास ने मुझे एक धुली अच्छी साड़ी निकाल के दी और कहा था। जा नहा ले, तब मैं उनको देखती रह गई। उनके इस वाक्य में मुझे माँ तुम्हारी परछाई दिखाई देने लगी थी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। सास और मेरे पति ने जबरदस्ती करके मेरे गले के नीचे नींद की कई गोलियाँ उतार दी और यह क्रम तीन दिन तक चलता रहा। इन तीन दिनों में मुझे खाना भी मिला। मुझे उसकी जरूरत भी नहीं थी। माँ मेरे अधजले जिस्म की तरह मेरी साड़ी का एक कोना भी अधजला रह गया है। माँ तुम जल्दी आजाओ आज मेरे ससुर ने तुम्हें और पिताजी को टेक्सी भेज कर इज्जत के साथ बुलाया है मां तुम्हें याद है तुमने कहा था हिन्दू समाज में माँ बेटी के घर नहीं जाती मुझे मालूम हैं आज तुम सारे सामाजिक बंधन तोड़ के भागी आओगी।

ओह आज पिता जी के चरणों में मेरे ससुर जी ने अपनी पगड़ी उतार के रख दी है। हमारी लाज बचालो समधी जी। बहू को समझाओ। दो परिवारों की मर्यादा का सवाल है। पिताजी आँखों मे खून के आँसू भरे मेरे अधजले शरीर से कह रहे हैं। "बेटी दो परिवारों की मर्यादा का सवाल है. पुलिस आने वाली है। तुम्हारे बयान लेगी तुम यही कहना स्टोव फटने में जली हूँ मुझे किसी ने नहीं जलाया। माँ तुम काँप तभी मां का तड़पता हुआ हाथ मेरे सर पर था। बेटा दो परिवारों की मर्यादा का सवाल है-इज्जत रख लेना

माँ तुमने विदा करते समय कहा था, बेटी तेरे सास-ससुर ही माता-पिता हैं। और पति तेरा देवता, भगवान है। इनकी आज्ञा का पालन करना, और इनकी सेवा में कभी कोई कमी न रखना। माँ मैंने तुम्हारी आज्ञा का पालन किया हैं मैंने करवा चौथ के व्रत भी रखे थे। जा रही हूँ माँ स्वर्ग में। अपने पति का इन्तिजार करूँगी एक भारतीय पतिव्रता नारी की मनोकामना पूरी होगी। मेरा पति जल्दी ही मेरे पास आयेगा, मां मैं जा रही हूँ मेरा लाल स्वर्ग में मेरा इन्तिजार कर रहा होगा और तभी एक चीख निकली जो फिजा के कण कण में समा गई। घर की दीवारों में छतों की ऊँचाईयों में जमीन की तहों में.........."मुझे जलाया गया है। मुझे मेरे पति ने जलाया है।"

निस्संग जल, सिन्दूर
अमृत, रक्त, विष और स्याही,
इनमें आज मुझे/कोई भेद नहीं दिखता, इसलिये-
उन सबको घोल कर/अपने मुँहबोले मित्रों के चेहरों पर
पोत देना चाहता हूँ, जिससे--
शत्रु और मित्र की/पहचान ही मिट जाय।

डॉ० रमेशकुमार शर्मा (अस्तित्व से)

थोड़ी देर तक वातावरण की
धड़कनें सुनाई देती हैं/अधूरे संदर्भों के अन्तर्विरोध में
कभी पैर छोटा है/और जूता बड़ा है,
कभी जूता छोटा/और पैर बड़ा है।

—डॉ० अयूब 'प्रेमी' (संदर्भों के अन्तर्विरोध में' से

प्रश्न चिन्हों से सभी घर द्वार हैं।
शब्द के कुछ वर्ण हैं इस पार कुछ उस पार हैं
अर्थ पत्ते हैं चिनारों के हुये अंगार हैं।
इस विभाजित अंगना की बेल पर पतझार हैं।

—मोहन निराश ('बात बासी हो गई' से)

'बैसाखी' की यह भीड़
और ये मेले हैं
किन्तु हम अकेले हैं/हर जगह अकेले हैं।
इसलिये यार,
हमारी ये 'बैसाखियाँ' मत छीनो।

डॉ० सोमनाथ कौल ('बैसाखियाँ' से)

सम्पादक :-
डॉ॰ निज़ामउद्दीन

सहायक सम्पादक :-
श्रीमती बदरुन्निसा

प्रकाशक—अप्रेनिसोम संगोष्ठी
आर-७ (न्यू)
कश्मीर विश्वविद्यालय परिसर
हज़रतबल श्रीनगर-६

मुद्रक—इन्डो प्रिंटिंग प्रैस श्रीनगर।

सभापति--डॉ॰ अयूब 'प्रमी'

मंत्री—श्रीमती बदरुन्निसा

कोषाध्यक्ष डॉ॰ सोमनाथ कौल

मूल्य—तीन रुपये

सन् १९८४

आजीवन सदस्यता शुल्क सौ रुपये

An anthology entitled 'HIMANI'
Published by Aprenisom Sangoshthi, Srinagar.